निर्वाचन राजनीति एवं मतदान व्यवहार

पदम चन्द्र मौर्य

सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग,

राजकीय महाविद्यालय थानागाजी, राजस्थान

सामाजिक न्याय, मानवीय अधिकार, तात्विक लोकतंत्र, नारीवाद, आतंकवाद, पर्यावरण, धारणीय विकास इत्यादि मुद्दे समकालीन राजनीतिक विज्ञान के प्रमुख विषय हैं।[1] लोकतंत्र के सन्दर्भ में मतदान व्यवहार समकालीन राजनीति की एक महत्वपूर्ण संकल्पना है। मतदान व्यवहार समकालीन लोकतांत्रिक राजनीति में सामान्य प्रयोग की जाने वाली अवधारणाओं में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। लोकतान्त्रिक सिद्धान्त एवं व्यवहार की अभिवृद्ध लोकप्रियता ने इस अवधारणा को व्यापक बनाया है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रत्येक वयस्क नागरिक सरकारी निर्णयों, नीतियों और कार्यक्रमों, विभिन्न राजनीतिक दलों की राजनीति और कार्यक्रमों और जन प्रतिनिधि की स्थिति प्राप्त करने के लिए निर्वाचन में खड़े उम्मीदवारों की योग्यता के सम्बन्ध में अपनी सहमति अथवा असहमति की अभिव्यक्ति के रूप में 'मतदान' का प्रयोग करता है।[2]

राजनीति विज्ञान के आधुनिक दृष्टिकोण का विकास दूसरे विश्व युद्ध (1939–1945) के बाद हुआ, परन्तु हमने कुछ संकेत 20वीं शताब्दी के आरंभ से ही मिलने लगे थे। 1908 में इग्लैण्ड में प्रसारित दो कृतियों (ग्रैहम वालास की ह्यूमन नेचर इन पॉलिटिक्स और आर्थर बेटंले की द प्रासेस ऑफ गवर्नमेंट) को आधुनिक दृष्टिकोण का अग्रदूत माना गया। इन कृतियों में राजनीतिक संस्थाओं के साथ–साथ राजनीति की अनौपचारिक प्रक्रियाओं पर प्रकाश डाला गया। इसमें राजनीति का विश्लेषण करते समय अन्य सामाजिक विज्ञानों – विशेषतः मनोविज्ञान और समाज विज्ञान का सहयोग लिया गया। वालास ने मनोविज्ञान की प्रेरणा से राजनीति के अध्ययन में व्यक्ति के व्यवहार को प्रमुखता दी और बेंटले ने समाजविज्ञान की प्रेरणा से राजनीति में समूहों में व्यवहार पर ध्यान केंद्रित किया।[3] 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में वालास ने व्यावहारिक राजनीति के अध्ययन में नए यथार्थवाद की मांग की। वालास के अनुसार मान प्रकृति बहुत जटिल हैं, अतः उसके बारे में पहले से ही कुछ मानकर चलना उपयुक्त नहीं होगा। मानव प्रकृति के बारे में कोई राय कायम करने से पहले उससे संबंधित तत्यों और साक्ष्य की जांच करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में गुण के बजाय परिमाण पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।[4] राजनीतिक प्रक्रिया को समझने से पूर्व विभिन्न राजनीतिक स्थितियों में मनुष्य व्यवहार का परीक्षण करना चाहिए।

आर्थर बेंटले ने भी राजनीति विज्ञान में तथ्यों के संकलन और परिमाप की मांग की। उसने समाजविज्ञान से प्रेरणा लेकर अनौपचारिक समूहों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उसने राजनीतिक प्रक्रिया में दबाव समूहों, दलों, चुनावों और लोकमत की भूमिका पर विशेष बल दिया।[5] 1930 में हेराल्ड लासवैल ने अपनी पुस्तक ''साइको पैथालॉजी एण्ड पॉलिटिक्स'' में राजनीतिक घटनाओं एवं क्रियाओं की व्याख्या के लिए मनोविज्ञान को आधार

बनाया। वाल्टर बेजहॉट, बुडरो विल्सन, लार्ड ब्राइस आदि विद्वानों ने राजनीति के यथार्थवादी अध्ययन पर बल दिया।

राजनीति विज्ञान के आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार राजनीति विज्ञान को केवल राज्य अथवा शासन के अध्ययन तक सीमित नहीं रखा जा सकता है। मानव जीवन समष्टिमय हें मानव जीवन के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि विभिन्न पहलुओं को हम एक–दूसरे से पूर्णतः पृथक नहीं कर सकते है। अतः आधुनिक दृष्टिकोण की मान्यता है कि राजनीति विज्ञान की गवेषणा का आधार व्यक्ति के केवल राज्य सम्बन्धी व्यवहार और क्रियाकलाप ही नहीं हैं, अपितु बहुपक्षीय व्यवहार और क्रियाकलाप हैं।

परम्परागत राजनीतिशास्त्र के अंतर्गत साधारणतः राजनीतिक संस्थाओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाता था। संस्थाओं के मानक रूप पर ध्यान दिया जाता था, उनकी कानूनी शक्तियां प्रायः यह संकेत देती थी कि प्रचलित संविधान या कानून के अनुसार ये शक्तियां क्या–क्या होनी चाहिए ? परन्तु यथार्थ के धरातल पर इन शक्तियों का प्रयोग कैसे होता है – इस पक्ष पर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता था। अतः जब तक इन संस्थाओं का औपचारिक रूप स्थिर रहता था, तब तक यथार्थ राजनीतिक समीकरणों में होने वाले परिवर्तनों का विश्लेषण आवश्यक नहीं समझा जाता था। फिर इन औपचारिक संस्थाओं के बाहर जो समूह यथार्थ राजनीति को प्रभावित करते थे, उनकी गतिविधियों को विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। इस तरह राजनीतिक यथार्थ का अध्ययन अधूरा रह जाता था। व्यवहारवाद ने इस परम्परागत उपागम को चुनौती देते हुए इस बात पर बल दिया कि राजनीतिक यथार्थ को समझने के लिए राजनीति विज्ञान को प्रचलित संस्थाओं के कानूनी – औपचारिक पक्षों के स्थान पर उन व्यक्तियों या क्रियाकर्ताओं के व्यवहार पर ध्यान देना चाहिए जो यथार्थ राजनीति के क्षेत्र में भिन्न–भिन्न भूमिका निभाते है।

जी. ए. ऑल्मंड और जी. बी. पॉवल (कंपरेटिव पॉलिटिक्स) के अनुसार व्यवहारवादी उपागम का सीधा सरल अर्थ यह है कि राजनीतिक भूमिकाओं के पात्रों से वास्तविक व्यवहार का अध्ययन किया जाये, कानूनी मानकों की विषय–वस्तु, विचारधाराओं और औपचारिक संस्थाओं पर उतना ध्यान न दिया जाए, या इनसे उतना ही सरोकार रखा जाए जहां तक वे राजनीतिक कार्यवाही को प्रतिबिंबित या प्रभावित करती है।'' राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करने वाले सामाजिक तत्वों पर विशेष ध्यान दिया जाता हें अतः व्यवहारवाद के अनुसार हमें किसी देश के विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका की रचना और शक्तियों के स्थान पर इनसे जुड़े हुए व्यक्तियों – अर्थात विधायकों, मंत्रियों, अधिकारितंत्र और न्यायाधीशों के वास्तविक व्यवहार के प्रतिमानों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। इनके अतिरिकत राजनीतिक क्षेत्र के अन्य पात्रों – जैसे कि मतदाताओं, हित समूहों, विशिष्टवर्गो, राजनीतिक दलों, सामाजिक आंदोलनों के प्रतिभागियों और नेताओं इत्यादि के व्यवहार का अध्ययन भी करना चाहिए।[6] उदाहरण के लिए मतदाता जैसे मतदान करते हैं तथा इनके व्यवहार को प्रभावित करने वाले सामाजिक

तत्वों जैसे कि राजनीतिक संस्कृति के विश्लेषण पर भी समुचित ध्यान देना चाहिए। इससे यथार्थ मूलक अध्ययन संभव हो जाएगा।

इस दृष्टि से निर्वाचन राजनीति एवं मतदान व्यवहार यथार्थमूलक अध्ययन का महत्वपूर्ण विषय है। निर्वाचन राजनीति एवं मतदान व्यवहार आधनिक राजनीति विज्ञान के लोकप्रिय सिद्धान्त एवं व्यवस्था लोकतंत्र से सम्बन्धित है। अतः निर्वाचन राजनीति एवं मतदान व्यवहार जैसी राजनीतिक प्रक्रिया को लोकतंत्र के अध्ययन के बिना नहीं समझा जा सकता है।

लोकतंत्र समकालीन विश्व की सर्वोत्तम शासन व्यवस्था है। विश्व के अधिकांश राष्ट्रो में लोकतांत्रिक व्यवस्था प्रचलित है। लोकतंत्र की स्वीकार्यता शैन–शैने इतनी विस्तृत होने लगी है कि गैर–लोकतांत्रिक राष्ट्र भी लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति सहमति व्यक्त करने लगे है और गैर–लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में भी लोकतंत्र समर्थक अपनी आवाज बुलंद कर रहे हैं। लोकतंत्र विरोधी व्यवस्थाओं यथा साम्यवादी चीन और निरंकुशवादी उत्तर कोरिया में भी लोकतंत्र की मांग प्रबल होने लगी है। लोकतंत्र समर्थकों के वर्ष 2011 से सरकार के साथ लगातार संघर्ष के कारण ही दक्षिण चीन के गांव वुकान का नाम 'डेमोक्रेसी विलेज' पड़ गया है। म्यांनमार में आंग सान सू के नेतृत्व में नेशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी (एन.एल.डी.) के दीर्घ संघर्ष के उपरान्त लोकतांत्रिक शासन का गठन लोकतंत्र की अभिवृद्ध स्वीकार्यता का प्रमाण है। लोकतंत्र मात्र एक आदर्श राजनीतिक व्यवस्था ही नहीं वरन् श्रेष्ठ राजनीतिक अवधारणा भी है। यही कारण है कि संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 2007 में 15 सितम्बर के दिन को 'इंटरनेशनल डेमोक्रेसी डे' घोषित किया। इसका उद्देश्य दुनियाभर में लोकतांत्रिक मूल्यों और सिद्धान्तों को बढ़ावा देना और लोगो को जागरूक करना है। इसका संबंध किसी क्षेत्र, देश या भाषा से नहीं बल्कि इसके वैश्विक मूल्य हैं। उनके अनुसार कोई भी व्यक्ति राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और जीवन से जुड़े पहलुओं की बातें अभिव्यक्त कर सकता है।[7]

लोकतांत्रिक व्यवस्था में निर्वाचन राजनीतिक अभिव्यक्ति का श्रेष्ठ अभिकरण है तथा मतदान राजनीतिक निर्णय अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम विकल्प है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार के गठन के सम्बन्ध में राजनीतिक दलों के प्रति मतदाताओं के समर्थन अथवा विरोध की अभिव्यक्ति मतदान के द्वारा होती है। लोकतंत्र का आधार लोक अथवा जनता होती है। कोई भी लोकतांत्रिक सरकार सही अर्थो में लोकतांत्रिक है अथवा नहीं। इसका वास्तविक परीक्षण निवार्चन प्रक्रिया मे जनता की सहभागिता से ही सुनिश्चित होता है।

लोकतंत्र तथा सहभागिता एक–दूसरे के पूरक है। यह सहभागिता ही लोकतंत्र को सफल बनाती है। इसी सहभागिता के कारण नागरिक समाज, सम्पूर्ण सामाजिक तत्व में एकीकृत हो जाता है। यह सहभागिता ही लोगों द्वारा उनकी सार्वजनिक मामलों में भागीदारी को संभव बनाती है। राजनीति विज्ञान में सहभागिता से अभिप्राय राजनीतिक सहभागिता से होता है अर्थात शासन व्यवस्था के निर्माण एवं उसके संचालन में जनता की भागीदारी। इस भागीदारी के अनेक रूप होते है – चुनावों में मताधिकार का प्रयोग करना, उम्मीदवार के रूप में प्रचार–प्रसार

करना, जनप्रतिनिधि अथवा राजकर्मी के रूप में राजकीय मामलों एवं निर्णय–निर्माण आदि कार्यो में भाग लेना। राजनीतिक सहभागिता लोकतंत्र की सफलता की पूर्व शर्त है। लोकतंत्र में राजनीतिक सहभागिता जितनी अधिक होती है। लोकतंत्र उतना अधिक सशक्त होता है। बारबर (स्ट्रांग डेमोक्रसी), राबर्टसन (पोलिटिकल पार्टीसिपेशन), पेटमैन (पार्टीसिपेशन एण्ड डेमोक्रेटिक थ्योरी) नागरिकों द्वारा राजनीतिक जीवन में सहभागिता पर बल देते है।[8]

लोकतंत्र की परिकल्पना लोक अर्थात जनता की सहभागिता से ही पूर्ण होती है, लेकिन व्यावहारिक स्तर पर विशाल जनसंख्या वाले राज्यों में वास्तविक यथार्थ प्रत्यक्ष लोकतंत्र संभव नहीं है। अतः विकल्प के रूप में प्रतिनिधि लोकतंत्र को अपनाया गया। प्रतिनिधि लोकतंत्र में जनता अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन का संचालन करती है, ये प्रतिनिधि जनता द्वारा प्रत्यक्ष रीति से निर्वाचित होते है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संविधान के द्वारा भारत में लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। चूंकि भारत जैसे विशाल राष्ट्र में प्रत्यक्ष लोकतंत्र को अपनाना संभव नहीं था। अतः संविधान निर्माताओं ने भारत के लिए अप्रत्यक्ष लोकतंत्र को स्वीकार किया। भारत की जनता को अपने प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने का अधिकार प्राप्त है। भारतीय जनता एक निश्चित अवधि के लिए अपने प्रतिनिधियों को निर्वाचित करती है तथा उनके माध्यम से शासन कार्य में भाग लेती है।[9] निर्वाचनों के द्वारा ही सरकार का गठन होता है तथा जनता का सरकार पर नियंत्रण रहता है।

लोकतंत्र की सफलता के लिए स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन होना अत्यन्त आवश्यक है। अतः भारतीय संविधान के अनुच्छेद 324 से 329 में निर्वाचन से सम्बन्धित सम्पूर्ण व्यवस्था की गई है। भारतीय संविधान निर्माताओं के द्वारा स्वतंत्र और निष्पक्ष निर्वाचन के महत्व को स्वीकार कते हुए संविधान में स्वतंत्र निर्वाचन आयोग की व्यवस्था की। निर्वाचन व्यवस्था के महत्व को इंगित करते हुए पण्डित ह्रदयनाथ कुंजरू ने संविधान सभा में कहा था कि ''अगर निर्वाचन तंत्र दोषपूर्ण है या कुशल नहीं है या गैर–ईमानदार लोगों द्वारा संचालित होता है तो प्रजातंत्र उत्पत्ति के स्त्रोत ही विषमय हो जायेगे, जनता निर्वाचनों से यह सीखने के बदले कि अपने मत का प्रयोग किस प्रकार करे और उनका न्यायपूर्ण मतदान किस प्रकार संविधान में परिवर्तन और प्रशासन में सुधार ला सकता है, वह केवल यह जानने लगती है कि किस प्रकार षड़यंत्रों पर आधारित दलों का निर्माण किया जा सकता है और अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किन गलत तरीकों को अपनाया जा सकता है?''[10]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लोकतंत्र और निर्वाचन अन्योश्रित है। निर्वाचन लोकतंत्र रूपी इस वृक्ष को सींचने वाले जल के समान है। निश्चित अंतराल पर निश्चित विधि द्वारा निर्वाचन होते रहने से लोकतंत्र उत्तरोत्तर अधिक परिपक्व होता जाता है। एक मतदाता से प्रारम्भ होकर अंततः लोक इच्छा के तौर पर सम्पन्न निर्वाचन द्वारा स्थापित सरकार राज्य अथवा राष्ट्र पर शासन करने के लिए विधानतः अधिकृत होती है। निर्वाचन लोकतंत्र का आधार है लेकिन समाज की समान, सक्रिय एवं पूर्ण सहभागिता के बिना पूर्ण एवं स्वस्थ लोकतन्त्र संभव नहीं है। किसी भी सफल एवं सुद्धढ लोकतन्त्र के लिए निष्पक्ष एवं पारदर्शी निर्वाचन विशेष महत्व रखता है। लोकतन्त्र

को जीवन्त बनाये रखने के लिए स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन व्यवस्था प्राणवायु के सदृश्य है। भारत में स्वस्थ लोकतंत्र की स्थापना में निर्वाचन प्रकिया का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। निर्वाचन प्रकिया में अधिकाधिक जन सहभागिता ही लोकतन्त्र को सुदृढता प्रदान करती है। जन सहभागिता के आंकलन का आधार मतदान प्रतिशत होता है। किसी भी निर्वाचन में मतदान प्रतिशत मतदान व्यवहार द्वारा ही निर्धारित होता है।

सन्दर्भ सूची

1. एन. डी. अरोड़ा, राजनीति विज्ञान, टाटा एस सी ग्रा एजुकेशन प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली, 2013 पृ.1.2
2. जाहिदा अख्तर एवं युनूस शेख, ऑफ वोटिंग विहेवियर पब्लिक पॉलिसी एण्ड इन इण्डिया : श्योरिकल प्रोसाप्रक्टिव, एडमिनिस्ट्रसन रिसच्र, वां. 4, सं. 8, 2014
3. ओमप्रकाश गाबा, राजनीति सिद्धांत की रूपरेखा, मयूर पेपर बैक्स, नौएडा, 2001, पृ. 25
4. ओमप्रकाश गाबा, नोट–3, पृ. 26
5. ओमप्रकाश गाबा, नोट–3, पृ. 26
6. ओमप्रकाश गाबा, नोट–3, पृ. 35
7. दैनिक भास्कर, अलवर, 15 सितम्बर 2016, पृ. 4
8. एन. डी. अरोड़ा, नोट–1, पृ. 6.15
9. आर. सी. अग्रवाल, भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन, एम.चन्द्र एण्ड कम्पनी प्रा. लि., नई दिल्ली, पृ. 294
10. आर. सी. अग्रवाल, नोट–9, पृ. 296